# परम संत पूज्य महात्मा रामचंद्र जी ( लालाजी ) महाराज की अमूल्य शिक्षा

आत्मा या रूह जिसका वर्णन बार-बार आया है, इस श्रष्टि में सबसे अनोखी चीज़ है. यह ही सबसे महान एवं सार सत्य है .यह उस सूर्य की किरण या उस समुन्द्र की एक बूँद है जिससे हम अलग नहीं हैं और वही आत्मा का भंडार है - वही जीवन का केंद्र एवं स्रोत है और इसी केंद्र से विलग अथवा दूर हो जाना ही वास्तव में हमारे दुखों का कारण होता है . आत्मा के ऊपर से आवरण उतारने और सुरत शब्द के अभ्यास से आशय यह है कि हृदय में इस केंद्र का इष्ट बांधकर अर्थात उस आदर्श को हृदय में स्थित करके संत सद्गुरु से भेद ( यानी अभ्यास का तरीक़ा ) मालूम करके इसके खोज की चेष्टा की जाये. यदि किसी तरह तुम्हारे अन्तःकरण में यह भाव पैदा हो जाये कि सत पुरुष मालिक हमारा केंद्र है और हम उससे निकले हैं तो तुम में प्रेम के भाव प्रस्फुटित होकर तुम्हें विशेष प्रकार की अवस्था प्रदान करेंगे, जिससे स्वतः ही आत्मा तथा माया आदि की समझ आती जाएगी.

यह केंद्र पूर्णतः आत्मिक है और शुद्ध चेतन है. इसमें नाम मात्र को भी काल और माया नहीं है. ज्यों- ज्यों तुम्हारे आवरण उतरते जायेंगे और आत्मिक प्रकाश की अनुभूति का अवसर मिलता जायेगा, वैसे ही वैसे इसी जन्म में प्रेम प्राप्त होता जायेगा. जिन लोगों में अब तक आध्यात्मिकता जाग्रत नहीं हुई है, वे इस केंद्र से बहुत दूर हैं. जिनके आवरण उतर गए हैं वे अपेक्षाकृत उससे अधिक निकट हैं. जितना उस केंद्र से बिलगाव और दूरी होती जाएगी उतने ही आत्म-पथ पर माया के आवरण पड़ते जायेंगे और जितना अधिक केंद्र से निकट आते जायेंगे उतनी ही आत्मिक आनंद की अनुभूति बढ़ती जाएगी.

नीचे स्थूल मंडल है और ऊपर सूक्ष्मता तथा पवित्रता की स्थितियां हैं. मनुष्य मध्यावस्था में माया के मंडल में है. आज हमारी-तुम्हारी कुछ भी अवस्था हो परन्तु चूंकि हम उसके अंश हैं, हमारे लिए कभी मृत्यु नहीं है और न ही हम जीवन की देन से वंचित हो सकते हैं. हमें जो कुछ दुखों की अनुभूति है वह इन सब माया के आवरणों के कारण है और जैसे ही ये आवरण हटे हमको अपने असल रूप की समझ आयी, तब हम सुखी हो जायेंगे और उस समय हमारे सुख की कोई सीमा नहीं रहेगी. तब पूर्ण ज्ञान एवं शक्ति का केंद्र दृष्टिगोचर होता है. जो जितना इस केंद्र के निकट पहुंचेगा, वह उसी ढंग से शक्तिशाली और ज्ञानी होता जायेगा . यह एक सच्चाई है जो हर अभ्यासी को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए.

सुरत या आत्मा की दिव्यता और कार्यकलाप की महत्ता सभी संसार मानता है. इंसान बुद्धि का पुतला कहा जाता है. वह जिस ओर भी ध्यान करता है, उसी ओर आश्चर्यजनक परिणाम पैदा करके दिखलाया करता है. हर मामले में केवल उसे ध्यान देने की देर है, फिर क्या है जो वह नहीं कर सकता ? इस ध्यान शक्ति के ऊपर अधिकार पाने पर आकाश मंडल की छिपी हुईं बिजली जैसी शक्तियां उसके संकेत पर काम करने को तैयार रहती हैं. इस स्थूल माया के मंडल में रहकर भी वह जब कभी मन को कार्य विशेष की ओर एकाग्र करता है तो कमाल कर दिखाता है - क्या इसमें कोई आश्चर्य है ? फिर मनुष्य की हस्त कलाएं, उसके विचारों की ऊंची उडान तथा उसकी बुद्धि की खोज के तमाशे सभी तो इसके साक्षी हैं. उसमें हर बात को कर दिखाने की संभावित क्षमता है.

जब यह हाल आत्मा का है, जिसकी उपमा समुन्द्र की बूँद से दी गयी है, तो समझना चाहिए कि उस समुन्द्र की शक्ति और ज्ञान की भला क्या सीमा होगी? यह विचार करते ही बुद्धि चक्कर खाने लगती है अथवा आश्चर्यचकित हो जाती है. वह ज्ञान का, आनंद का और असल सत्ता का भण्डार है. इस संसार में जो कुछ प्रकृति का कार्य-कौशल तथा सौंदर्य दृष्टिगोचर हो रहा है वह आकस्मिक मात्र नहीं है, बल्कि वह किसी दिव्यता और प्रकृति की पूर्ण सामर्थ्य एवं सम्पन्नता की झलक प्रस्तुत करता है और परमात्मा की सत्ता का प्रमाण है. यदि किसी प्रकार यह बूँद उसी समुन्द्र में प्रविष्ट हो जाये तो फिर इसके आनंद , शक्ति और ज्ञान का क्या ठिकाना ?

हमने सुख के प्रकार तथा सुख के मंडलों और उनके साधन वर्णन कर दिए हैं. इन सब का असल उद्देश्य यह है कि मनुष्य उस सुख के भण्डार की ओर प्रवृत्त हो सके, वरना फिर इसके बीच की अवस्थाओं में भटकाव होने का भय है. सुख के भण्डार की ओर वापस चलने के साधन कठिन नहीं हैं. इन्हें स्त्री-पुरुष, युवा-वृद्ध सब कर सकते हैं. इसके लिए यह बिलकुल आवश्यक नहीं है कि मनुष्य अपने जीवन के काम - काज आदि छोड़ दे, बल्कि आवश्यकता यह है कि आसानी से जीवन निर्वाह करते हुए सुरत शब्द का अभ्यास करता रहे. जो मनुष्य प्रसन्न रहता है वह परमात्मा की पूजा व उससे प्रेम बहुत आसानी से कर सकता है.

मालिक को प्रसन्न करने की कोशिश करना चाहिए और सारी बातें उसी की इच्छा के अधीन समझना चाहिए . ' तेरी इच्छा पूर्ण हो ' - यह महामंत्र हर भक्त और प्रेमी की जिव्हा पर रहना चाहिए. जो इस पर चलने वाले हैं, वे मालिक के किसी काम में दोष नहीं देखते और सदा उसकी याद में प्रसन्न रहने की आदत सीखते हैं. संतों का साधन प्रेम मार्ग है. प्रेमी उस मालिक के बन्दों में अच्छाई देखने का इच्छुक रहता है और बुराई की ओर से अपनी आँखें बंद कर लेता है. विशाल ह्रदयता, विमल बुद्धि, इच्छा शक्ति और साहस आदि प्रभावों को ह्रदयंगम करने वाला किसी से घृणा नहीं करता और न दूसरों की शिक़ायत अपनी जिव्हा पर लाता है. उसको हर काम में ' मालिक की मौज़' दिखाई देती है. उसको शान्ति वाह्य ही नहीं बल्कि आंतरिक अनुभूति में होती है. वह वहिर्मुखी साधन नहीं बल्कि अंतर्मुखी साधन करता है. उसको हर जगह मालिक के प्रेम का प्रकाश दृष्टिगोचर होता है . उसे मालिक के प्रेम और दया के अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखाई देता और वह उस मालिक की मौज़ को सदा दृष्टि में रखते हुए किसी भी दुःख-सुख की परिस्थिति में मगन और संतुष्ट रहता है.

जो मनुष्य इस केंद्र की ओर चित्त की वृत्ति को लगाता है वह सिवाय मालिक के और किसी वस्तु को नहीं जानता - न ही वह किसी नाशवान वस्तु के लिए प्रार्थना करता है और न अपने प्रेम, भक्ति के बदले का कोई विचार करता है. वह जो प्रार्थना करता है वह भी इसी प्रसन्नता के कारण से करता है, इस भावना से नहीं कि इससे उसका भला होगा. इससे वह उस परमात्मा के समीप जाता है और इस प्रकार वह नित्य -प्रति उसकी समीपता पाता जायेगा. उसको और क्या चाहिए ? कहा गया है कि परमात्मा को चाहने वाला ' सच्चा प्रेमी है ' और संसार को चाहने वाला ' कपटी ' है तथा परलोक चाहने वाला ' मज़दूर ' है क्योकि वह भक्ति का बदला या महनताना चाहता है.

परमात्मा के प्रेमी का सांसारिक सुख पहुंचाने वालों अथवा ऐसे साधू भेषधारियों से कोई सम्बन्ध नहीं होता. भेषधारी की आशा होती है. प्रेमी के मनन का केंद्र परमात्मा (मालिके कुल ) होता है. यह इन दोनों में बहुत बड़ा अन्तर है. भेषधारी ने जो स्वांग बनाया है , वह केवल धन्धे या संसार में भ्रमण करने आदि सांसारिक उद्देश्यों के लिए है. प्रेमी भक्त अपने अंतर् में शब्द का अभ्यास करता हुआ परमात्मा के दर्शन का इच्छुक होता है. उसका काम दिखावे का नहीं होता

धर्म दिखाने की वस्तु नहीं है. धर्म, साधन, मार्ग , पंथ - ये सब शब्द परमार्थ-पथ के पर्यायवाची हैं. सुरत का उतार प्रथम शब्द के द्वारा हुआ और यह सुरत जहां -जहां उतरी, वहां मंडल बना कर नीचे को आ गयी. ऊपर प्रकाश है ओर नीचे अंधकार है. सुरत तो शब्द की डोर को पकड़ कर ऊपर की ओर चलती है. इसकी गति उस मछली के समान है जो पानी की उलटी धार को पकड़ कर आगे बढ़ती जाती है . सुरत ऊपर की ओर शब्द की सहायता से एक स्थान (चक्र ) पर पहुँच कर दूसरे स्थान पर जाने की इच्छुक होती है.

और फिर ऐसा ही अभ्यास करते रहने के बाद सुरत निज भंडार में प्रविष्ट हो जाती है, जो अलख है , अगम है, जिसके प्रकाश का अनुमान हज़ारों, लाखों, करोड़ों और अनगिनत सूर्य-चंद्र के प्रकाश से भी नहीं लगाया जा सकता. न वहां काल है, न धर्म है, न माया है, न स्थूलता है - आकाश के शब्द की संज्ञा भी वहां के लिए प्रयोग नहीं की जा सकती . वाणीऔर मन की वहां कोई जगह नहीं है. किसी अनुमान आदि की भी वहां पहुँच नहीं है .न वहां दिन है, न रात है, न इसका कोई नाम है और न कोई निशान है.

जो आत्मा वहां तक पहुँच गयी वह फिर सदा के लिए मुक्त हो जाती है, फिर इसको कभी माया के आवरणों का, जन्म-मरण के चक्र का, भय नहीं रहता है. जो वहां पहुंचा वह काल के चक्र से छूट गया. वह अमर हो जाता है. जो आत्मा वहां स्थिति प्राप्त कर लेती है वह अनंत आनंद में मस्त होकर ख़ुशी के गीत गाती हैं और इस अनुपम दशा को संत कबीर जैसी पूर्ण आत्माएं ही बता पाती हैं :

हम वासी उसके जहां , सत्तपुरुष की आन !

सुख-दुःख कोई व्यापे नहीं , सब दिन एक समान!!

कहना था सो कह चुका, अब कुछ कहा न जाय !

एक रहा दूजा मिटा , गया कबीर समाय !! राम सन्देश : मार्च -अप्रैल :२०००

---